Toppersnotes®
Unleash the topper in you

राजस्थान

राज्य पात्रता परीक्षा (SET)

पेपर - 2

(संस्कृत)

भाग - 2

SIERRA INNOVATIONS

Index

क्र.सं.	अध्याय	पृष्ठ सं.
	इकाई - V **सामान्य-परिचय : निम्नलिखित आचार्यों का परिचय**	
1.	सामान्य-परिचय	1
2.	पाणिनीय शिक्षा का परिचय	3
3.	भाषाविज्ञान: परिभाषा एवं स्वरूप	5
	इकाई - VI **व्याकरण का विशिष्ट अध्ययन**	
4.	व्याकरण संज्ञा प्रकरण (लघुसिद्धान्तकौमुदी के अनुसार प्रमुख संज्ञाएँ)	10
5.	सन्धि प्रकरण (महत्वपूर्ण सूत्र एवं उदाहरण)	11
6.	सुबन्त प्रकरण (अजन्त एवं हलन्त)	12
7.	कारक प्रकरण (सिद्धान्तकौमुदी के अनुसार मुख्य सूत्र)	13
8.	समास प्रकरण (लघुसिद्धान्तकौमुदी के अनुसार)	13
9.	तिङन्त प्रकरण: 10 गणों का संक्षिप्त परिचय	14
10.	प्रत्ययान्त (सनाद्यन्त) प्रक्रिया	15
11.	वाक्यपदीयम्: ब्रह्मकाण्ड (महत्वपूर्ण दार्शनिक सिद्धांत)	16
	इकाई - VII **सामान्य-परिचय**	
12.	संस्कृत कवियों का परिचय	29
13.	भाग 1: भारतीय काव्यशास्त्र के 6 प्रमुख सम्प्रदाय	35
14.	भाग 2: पाश्चात्य काव्यशास्त्र	37
	इकाई - VIII **विशिष्ट अध्ययन**	
15.	लघुन्न, लठित एवं लौयवत्व	39
16.	आत्मनेपद-परस्मैपद विभाग	40
17.	महाभाष्य (पस्पशाबिक)	41

18.	विशिष्ट नाट्य साहित्य - 1	45
19.	मृच्छकटिकम्	49
20.	विशेष नाट्य साहित्य - 2	53
21.	गद्य एवं सम्पू काव्य	55
22.	नलदमपु (प्रथम उच्चवास) - विस्तृत विश्लेषण	59
23.	साहित्यदर्पणः प्रथम परिच्छेद (विस्तृत अध्ययन)	60
24.	काव्यप्रकाश (आचार्य मम्मट)	63
25.	रसस्वरूपम्	66
26.	छन्द	71
27.	अलंकार	77

V - VI UNIT व्याकरण एवं भाषाविज्ञान

इकाई – V (क) सामान्य-परिचय : निम्नलिखित आचार्यों का परिचय

1. आचार्य पाणिनि (सूत्रकार)

- ✓ **काल:** 500 ई.पू. (ईसा पूर्व पाँचवीं शताब्दी)।
- ✓ **स्थान:** शलातुर (वर्तमान पाकिस्तान का लाहौर-अटक क्षेत्र)। इन्हें **'शलातुरीय'** भी कहा जाता है।
- ✓ **उपाधियाँ:** सूत्रकार, दाक्षीपुत्र (माता का नाम दाक्षी), आह्निककार, पदकार।
- ✓ **प्रमुख रचना: अष्टाध्यायी**। इसमें **8 अध्याय, 32 पाद** और लगभग **3995 सूत्र** हैं।
- ✓ **योगदान:** इन्होंने व्याकरण को वैज्ञानिक आधार दिया। शिव की तपस्या से प्राप्त **14 माहेश्वर सूत्र** इनके व्याकरण का मूल आधार हैं।

2. आचार्य कात्यायन / वररुचि (वार्तिककार)

- ✓ **काल:** 350 ई.पू.
- ✓ **स्थान:** दक्षिण भारत (दक्षिणापथ)।
- ✓ **प्रमुख रचना: वार्तिकपाठ**। इन्होंने अष्टाध्यायी के लगभग 1500 सूत्रों पर प्रामाणिक वार्तिक लिखे हैं।
- ✓ **अपर नाम:** इन्हें 'पुनर्वसु' और 'वररुचि' भी कहा जाता है।
- ✓ **काव्य: स्वर्गारोहणम्** (मूल पीडीएफ में मुद्रणदोष से 'स्वप्नोंरंहराणा' लिखा था)।
- ✓ **योगदान:** पाणिनि के सूत्रों में जो विषय **'उक्त'** (कहे गए), **'अनुक्त'** (छूट गए) या **'दुरुक्त'** (दोषपूर्ण या अस्पष्ट) थे, उन पर गंभीर विचार करना इनका मुख्य कार्य था।

3. महर्षि पतंजलि (भाष्यकार)

- ✓ **काल:** 200 ई.पू. (ये शुंग वंश के राजा **पुष्यमित्र शुंग** के समकालीन थे)।
- ✓ **स्थान:** गोनर्द (गोंडा, उत्तर प्रदेश)। इन्हें **'गोनर्दीय'** या **'गोणिकापुत्र'** भी कहा जाता है।
- ✓ **प्रमुख रचना: महाभाष्य** (यह **84 या 85 आह्निकों** में विभक्त है)।
- ✓ **अन्य रचनाएँ:** योगसूत्र, महानन्दकाव्य, चरकसंहिता (प्रतिसंस्कार/संशोधन)।
- ✓ **योगदान:** इन्हें 'शेषनाग' का अवतार माना जाता है। व्याकरण के **'मुनित्रय'** (पाणिनि, कात्यायन, पतंजलि) में अंतिम होने के कारण इनका मत सबसे प्रबल और प्रामाणिक माना जाता है (**'यथोत्तरं मुनीनां प्रामाण्यम्'**)।

4. आचार्य भर्तृहरि (व्याकरण दार्शनिक)

- ✓ **काल:** 450 – 510 ईस्वी (5वीं-6ठी शताब्दी)।
- ✓ **प्रमुख रचना: वाक्यपदीयम्**; यह व्याकरण दर्शन का प्रधान ग्रंथ है जो तीन काण्डों में विभक्त है— **ब्रह्मकाण्ड, वाक्यकाण्ड और पदकाण्ड**।

- ✓ **दार्शनिक मत: शब्दब्रह्मवाद** और **स्फोटवाद** ।
- ✓ **योगदान:** इन्होंने व्याकरण को केवल नियमों का शास्त्र न मानकर उसे **'मोक्ष का द्वार' (तद्द्वारमपवर्गस्य)** और दर्शन के रूप में प्रतिष्ठित किया ।

5. वामन एवं जयादित्य (काशिकाकार)

- ✓ **काल:** 650 ईस्वी (7वीं शताब्दी) ।
- ✓ **प्रमुख रचना: काशिकावृत्ति** (यह अष्टाध्यायी पर लिखी गई सबसे प्रसिद्ध और सरल वृत्ति है) ।
- ✓ **विशेषता:** इसमें **जयादित्य ने प्रथम 5 अध्याय** और **वामन ने अंतिम 3 अध्याय** (6, 7, 8) लिखे हैं ।
- ✓ **योगदान:** अष्टाध्यायी के क्लिष्ट सूत्रों को उदाहरणों और प्रत्युदाहरणों के साथ सरल भाषा में समझाने का श्रेय इन्हें जाता है।

6. जिनेन्द्रबुद्धि (न्यायकार)

- ✓ **काल:** 8वीं शताब्दी (लगभग 725 ईस्वी) ।
- ✓ **प्रमुख रचना: काशिकाविवरणपंजिका**, जिसे संपूर्ण संस्कृत जगत में **'न्यास'** के नाम से जाना जाता है ।
- ✓ **विशेषता:** ये एक बौद्ध वैयाकरण थे । इनके द्वारा रचित 'न्यास', काशिकावृत्ति पर लिखी गई सबसे प्राचीन और महत्वपूर्ण टीका है ।

7. आचार्य कैयट (टीकाकार)

- ✓ **काल:** 11वीं शताब्दी ।
- ✓ **स्थान:** कश्मीर (इनके पिता का नाम **जयट** था) ।
- ✓ **प्रमुख रचना: महाभाष्य-प्रदीप** (या केवल 'प्रदीप') ।
- ✓ **योगदान:** पतंजलि के महाभाष्य के गहन रहस्यों को समझने के लिए 'प्रदीप' टीका को सबसे प्रामाणिक माना जाता है; इसके बिना महाभाष्य का गंभीर अध्ययन कठिन है ।

8. आचार्य रामचंद्र (प्रक्रियाकार)

- ✓ **काल:** 15वीं शताब्दी ।
- ✓ **प्रमुख रचना: प्रक्रियाकौमुदी** ।
- ✓ **योगदान:** इन्होंने अष्टाध्यायी के अष्टाध्यायी-क्रम को छोड़कर सूत्रों को **'विषयवार'** (जैसे संज्ञा, संधि, सुबन्त, तिङन्त) क्रमबद्ध रूप से सजाया । इसी प्रक्रिया-पद्धति को आगे बढ़ाकर परवर्ती काल में भट्टोजी दीक्षित ने 'सिद्धान्तकौमुदी' की रचना की।

9. भट्टोजी दीक्षित (प्रक्रिया शिरोमणि)

- ✓ **काल:** 17वीं शताब्दी का प्रारंभ ।
- ✓ **गुरु:** शेषकृष्ण ।
- ✓ **प्रमुख रचनाएँ: वैयाकरणसिद्धान्तकौमुदी** (सिद्धान्तकौमुदी), **प्रौढ़मनोरमा** (अपनी ही सिद्धान्तकौमुदी पर लिखी गई प्रौढ़ टीका), **शब्दकौस्तुभ** (अष्टाध्यायी पर आह्निकक्रम से विस्तृत टीका) ।
- ✓ **योगदान:** इन्होंने पाणिनीय मत की महत्ता को पुनः स्थापित किया और रामचंद्र की प्रक्रिया-पद्धति को परिमार्जित कर चरम उत्कर्ष पर पहुँचाया ।

ToppersNotes Unleash the topper in you

10. वरदराज (लघुसिद्धान्तकौमुदीकार)

- ✓ **काल:** 17वीं शताब्दी का मध्य ।
- ✓ **गुरु:** ये भट्टोजी दीक्षित के प्रधान शिष्य थे ।
- ✓ **प्रमुख रचनाएँ: लघुसिद्धान्तकौमुदी**, मध्यसिद्धान्तकौमुदी, सारसिद्धान्तकौमुदी और गीर्वाणपद्मंजरी ।
- ✓ **योगदान:** इन्होंने भट्टोजी दीक्षित की क्लिष्ट सिद्धान्तकौमुदी के सूत्रों को संक्षिप्त कर छात्रों के लिए व्याकरण सीखने का मार्ग अत्यंत सुगम बना दिया ।

11. कौण्डभट्ट (वैयाकरण दार्शनिक)

- ✓ **काल:** 17वीं शताब्दी ।
- ✓ **वंश परिचय:** ये भट्टोजी दीक्षित के भतीजे और रंगोजी दीक्षित के पुत्र थे ।
- ✓ **प्रमुख रचना: वैयाकरणभूषण** तथा **वैयाकरणभूषणसार** ।
- ✓ **योगदान:** इन्होंने वाक्यपदीयम् की दार्शनिक परंपरा को आगे बढ़ाते हुए 'पद-पदार्थ' के संबंधों, स्फोटवाद और व्याकरण के दार्शनिक पक्ष (जैसे धात्वर्थ-निर्णय, सुबर्थ-निर्णय) पर गंभीर विवेचन किया ।

12. नागेशभट्ट (अंतिम महान स्तंभ)

- ✓ **काल:** 17वीं शताब्दी का अंत और 18वीं शताब्दी का प्रारंभ ।
- ✓ **आश्रयदाता:** श्रृंगवेरपुर (सिंगरौर) के राजा **रामसिंह** ।
- ✓ **पिता का नाम:** शिवभट्ट (माता: सती देवी) ।
- ✓ **प्रमुख रचनाएँ: परिभाषेन्दुशेखर**, लघुशब्देन्दुशेखर, बृहच्छब्देन्दुशेखर, **वैयाकरणसिद्धान्तमंजूषा** (इसके लघु और परम लघु रूप भी हैं), तथा महाभाष्य-प्रदीप-उद्द्योत ।
- ✓ **विशेष तथ्य:** इन्हें नव्य-व्याकरण शास्त्र का **'एकछत्र सम्राट'** माना जाता है । इनकी अत्यंत तार्किक और सूक्ष्म टीकाओं के बिना आज व्याकरण का उच्च अध्ययन असंभव है ।

पाणिनीय शिक्षा का परिचय

शिक्षा का अर्थ और महत्त्व

- ➢ **शिक्षा वेदांग का प्रथम अंग है** । वह शास्त्र जिसके द्वारा वर्णों के उच्चारण की शुद्ध विधि सीखी जाती है, उसे शिक्षा कहते हैं ।
- ➢ **सायणाचार्य के अनुसार:** "स्वरवर्णायुच्चारणप्रकारो यत्र शिक्ष्यते उपदिश्यते सा शिक्षा।" अर्थात् जहाँ स्वर और वर्णों के उच्चारण की विधि सिखाई जाए, वह शिक्षा शास्त्र है ।

पाणिनीय शिक्षा का वेदांग में स्थान

- ➢ वेदांग रूपी पुरुष के मुख को **व्याकरण** कहा गया है, जबकि **शिक्षा** को उस वेदपुरुष की नासिका (नाक) माना गया है— **"शिक्षा घ्राणं तु वेदस्य"** ।
- ➢ पाणिनीय शिक्षा में कुल **60 श्लोक** हैं । इसमें वर्णों की कुल संख्या **63 या 64** मानी गई है (**"त्रिषष्टिश्चतुःषष्टिर्वा वर्णाः शम्भुमते मताः"**) ।

वर्णों का वर्गीकरण

पाणिनीय शिक्षा के अनुसार वर्णों को मुख्य रूप से निम्न श्रेणियों में बाँटा गया है:

1. **स्वर:** कुल **21 या 22 स्वर** माने गए हैं। इन्हें उच्चारण काल/मात्रा के आधार पर **ह्रस्व, दीर्घ और प्लुत** में विभाजित किया गया है।
2. **व्यंजन:** व्यंजनों को मुख्य रूप से तीन समूहों में बाँटा गया है:
   - ✓ **स्पर्श व्यंजन:** 'क' से लेकर 'म' तक के कुल **25 वर्ण**। इन्हें पंचवर्गीय व्यंजन कहा जाता है।
   - ✓ **अन्तःस्थ व्यंजन:** य, र, ल, व (इन्हें 'यण्' वर्ण भी कहते हैं)। संख्या: 4।
   - ✓ **ऊष्म व्यंजन:** श, ष, स, ह (इन्हें 'शल्' वर्ण भी कहते हैं)। संख्या: 4।
3. **अयोगवाह:** इसके अंतर्गत अनुस्वार, विसर्ग, जिह्वामूलीय (श) और उपध्मानीय (फ) आते हैं।
4. **यम वर्ण:** क, ख, ग, घ के बाद यदि किसी वर्ग का पंचम वर्ण आए, तो उनके बीच की सदृश ध्वनि 'यम' कहलाती है (जैसे- चक्क्नतुः में द्वितीय क्)। इनकी संख्या 4 है।

उच्चारण स्थान (8 स्थान)

पाणिनीय शिक्षा के अनुसार वर्णों की उत्पत्ति के **8 उच्चारण स्थान** हैं (जबकि सामान्य व्याकरण में केवल 7 स्थान मिलते हैं, पाणिनीय शिक्षा में **'उरस' (हृदय/छाती)** को आठवाँ स्थान माना गया है):

"अष्टौ स्थानानि वर्णानामुरः कण्ठः शिरस्तथा। जिह्वामूलं च दन्ताश्च नासिकौष्ठौ च तालु च॥"

1. **कण्ठ (कण्ठ्य):** अ, आ, क-वर्ग (क, ख, ग, घ, ङ), ह और विसर्ग। (वायु कण्ठ का स्पर्श करते हुए बाहर आती है)।
2. **तालु (तालव्य):** इ, ई, च-वर्ग (च, छ, ज, झ, ञ), य और श। (जिह्वा का मध्य भाग तालु का स्पर्श करता है)।
3. **मूर्धा (मूर्धन्य):** ऋ, ॠ, ट-वर्ग (ट, ठ, ड, ढ, ण), र और ष। (जिह्वा की नोक मूर्धा का स्पर्श करती है)।
4. **दन्त (दन्त्य):** ऌ, त-वर्ग (त, थ, द, ध, न), ल और स। (जिह्वा का अग्र भाग ऊपर के दांतों को छूता है)।
5. **ओष्ठ (ओष्ठ्य):** उ, ऊ, प-वर्ग (प, फ, ब, भ, म) और उपध्मानीय। (दोनों होंठों का आपस में संयोग होता है)।
6. **कण्ठतालु (कण्ठतालव्य):** ए, ऐ। (कण्ठ और तालु दोनों के सहयोग से)।
7. **कण्ठोष्ठ (कण्ठोष्ठ्य):** ओ, औ। (कण्ठ और ओष्ठ दोनों के सहयोग से)।
8. **दन्तोष्ठ (दन्तोष्ठ्य):** व। (ऊपर के दाँत और नीचे का होंठ परस्पर मिलते हैं)।
9. **जिह्वामूल (जिह्वामूलीय):** क और ख से पहले आने वाला आधा विसर्ग जैसा चिह्न (क, ख)।
10. **नासिका (नासिक्य):** अनुस्वार (ं) तथा प्रत्येक वर्ग का पंचम वर्ण (ङ, ण, ञ, म, न)।

<u>प्रयत्न प्रकरण</u>

वर्णों के उच्चारण में फेफड़ों से निकलने वाली कोष्ठ्य वायु जो चेष्टा या प्रयास करती है, उसे **प्रयत्न** कहते हैं। प्रयत्न के मुख्य रूप से दो भेद होते हैं:

1. **आभ्यन्तर प्रयत्न (5 भेद - लघुसिद्धान्तकौमुदी के अनुसार)**

   यह वर्णों के उच्चारण से ठीक पहले मुख के भीतर होने वाली आंतरिक चेष्टा है:
   - ✓ **स्पृष्ट:** इसमें जिह्वा उच्चारण स्थान को पूरी तरह छूती है। 'क' से लेकर 'म' तक के 25 स्पर्श वर्ण इसके अंतर्गत आते हैं।
   - ✓ **ईषत्स्पृष्ट:** इसमें जिह्वा उच्चारण स्थान को थोड़ा छूती है। अन्तःस्थ वर्ण (य, र, ल, व) इसके अंतर्गत आते हैं।
   - ✓ **विवृत:** इसमें मुख पूरी तरह खुला रहता है। सभी स्वर (अच्) इसके अंतर्गत आते हैं।

- ✓ **ईषद्विवृत:** इसमें मुख थोड़ा खुला रहता है। ऊष्म वर्ण (श, ष, स, ह) इसके अंतर्गत आते हैं ।
- ✓ **संवृत:** इसमें वायु का मार्ग बंद रहता है। केवल ह्रस्व 'अ' जब वह प्रयोग की सिद्धावस्था में हो, तब उसका प्रयत्न संवृत होता है । (प्रक्रिया दशा में वह विवृत ही रहता है)।

2. बाह्य प्रयत्न (11 भेद)

यह वर्णों के उच्चारण के अंतिम समय में या मुख से बाहर निकलते समय होने वाली चेष्टा है:

इसके 11 भेद हैं: विवार, संवार, श्वास, नाद, घोष, अघोष, अल्पप्राण, महाप्राण, उदात्त, अनुदात्त और स्वरित।

- ✓ **अघोष, विवार, श्वास (खर प्रत्याहार):** प्रत्येक वर्ग का 1, 2 वर्ण तथा श, ष, स ।
- ✓ **घोष (सघोष), संवार, नाद (हश् प्रत्याहार):** प्रत्येक वर्ग का 3, 4, 5 वर्ण तथा य, र, l, v, h ।
- ✓ **अल्पप्राण:** जिनके उच्चारण में मुख से कम वायु निकलती है। प्रत्येक वर्ग का 1, 3, 5 वर्ण तथा अन्तःस्थ (य, र, ल, व) ।
- ✓ **महाप्राण:** जिनके उच्चारण में अधिक वायु (हकार जैसी ध्वनि) निकलती है। प्रत्येक वर्ग का 2, 4 वर्ण तथा ऊष्म (श, ष, स, h)।
- ✓ **उदात्त, अनुदात्त, स्वरित:** ये तीनों केवल **स्वरों (अच्)** के बाह्य प्रयत्न हैं।

भाषाविज्ञान: परिभाषा एवं स्वरूप

- **महर्षि पतंजलि के अनुसार (महाभाष्य):**

  "व्यक्ता वाचि वर्णा येषां त इमे व्यक्तवाचः।" अर्थात् जो वाणी मनुष्य द्वारा वर्णों (स्पष्ट ध्वनियों) में व्यक्त की जाती है, उसे भाषा कहते हैं ।
- **आधुनिक मत:** भाषा यादृच्छिक (Arbitrary) ध्वनि प्रतीकों की वह सुगठित व्यवस्था है जिसके माध्यम से समाज के लोग अपने विचारों का आदान-प्रदान करते हैं ।

भाषा की मुख्य विशेषताएँ:

- **भाषा यादृच्छिक (Random) होती है:** इसका अर्थ है कि किसी वस्तु और उसके नाम/शब्द के बीच कोई नैसर्गिक या स्वाभाविक संबंध नहीं होता; वह केवल समाज द्वारा स्वीकार की गई एक रूढ़ि होती है ।
- **भाषा कठिनता से सरलता की ओर प्रवाहित होती है:** भाषा का विकास हमेशा जटिलता से सरलता की ओर होता है (जैसे- वैदिक संस्कृत - लौकिक संस्कृत - प्राकृत - अपभ्रंश - आधुनिक प्रांतीय भाषाएँ) ।
- **भाषा एक सामाजिक अर्जन है:** यह समाज में रहकर सीखी जाती है, यह कोई जन्मजात या पैतृक संपत्ति नहीं है ।

भाषाओं का वर्गीकरण

विश्व की समस्त भाषाओं को मुख्य रूप से दो आधारों पर वर्गीकृत किया जाता है:

1. आकृतिमूलक (रूपमूलक/पदार्थक) वर्गीकरण
2. पारिवारिक (आनुवंशिक/ऐतिहासिक) वर्गीकरण

क. आकृतिमूलक वर्गीकरण (Morphological Classification)

यह शब्दों की बाह्य बनावट, धातु और प्रत्यय के योग पर आधारित होता है । इसके दो मुख्य भेद हैं:

1. **अयोगात्मक भाषा (Isolating):** इसमें प्रकृति (धातु) और प्रत्यय का कोई योग नहीं होता । प्रत्येक शब्द का अपना स्वतंत्र अर्थ और स्थान होता है । इसे 'स्वतंत्र-प्रत्यय' या स्थान-प्रधान भाषा भी कहते हैं ।
   - ✓ उदाहरण: चीनी, तिब्बती, बर्मी, स्याम (थाई) भाषाएँ ।

2. **योगात्मक भाषा (Agglutinative/Inflected):** इसमें प्रकृति (मूल तत्व) और प्रत्यय का संयोग होता है । इसके तीन प्रमुख उपभेद हैं:

- ✓ **अश्लिष्ट योगात्मक (Agglutinative):** इसमें प्रकृति और प्रत्यय साफ अलग-अलग दिखाई देते हैं, दोनों आपस में चिपकते हैं पर अपना रूप नहीं बदलते। उदाहरण: तुर्की, सुडानी, फिनिश, द्रविड़ भाषाएँ ।
- ✓ **श्लिष्ट योगात्मक (Inflected/विभक्तिप्रधान):** इसमें प्रकृति और प्रत्यय आपस में इस तरह घुल-मिल जाते हैं कि उन्हें अलग करना अत्यंत कठिन होता है । संस्कृत, लैटिन, ग्रीक और अरबी इसी श्रेणी में आती हैं । इसके दो भेद हैं—
  - अंतर्मुखी (Infixing): जैसे अरबी भाषा ।
  - बहिर्मुखी (Prefixing/Suffixing): जैसे संस्कृत और ग्रीक भाषाएँ ।
- ✓ **प्रश्लिष्ट योगात्मक (Polysynthetic):** इसमें पूरा वाक्य ही एक पद के रूप में जुड़कर संक्षिप्त हो जाता है। उदाहरण: चेरोकी, बास्क, अमेरिकी मूल निवासी भाषाएँ ।

ख. पारिवारिक वर्गीकरण (Genealogical Classification)

इसे ऐतिहासिक या सांप्रदायिक वर्गीकरण भी कहते हैं । इसका मुख्य आधार इतिहास, भूगोल, अर्थ और व्याकरणिक समानताएँ हैं । विश्व की भाषाओं को मुख्य रूप से **18 भाषा-परिवारों** में बाँटा गया है ।

भारोपीय परिवार (Indo-European Family)

यह विश्व का सबसे बड़ा और प्रमुख भाषा-परिवार है। इसे 'इंडो-जर्मनिक', 'आर्य परिवार' या 'विभक्तिप्रधान परिवार' भी कहा जाता है।

शतम् (Satem) और केन्तुम् (Centum) विभाजन:

प्रोफेसर आस्कोली ने ध्वनि के आधार पर (विशेषकर 'सौ' संख्या के लिए संस्कृत के 'शतम्' और लैटिन के 'केन्तुम्' शब्द के आधार पर) भारोपीय परिवार को दो मुख्य वर्गों में विभाजित किया है:

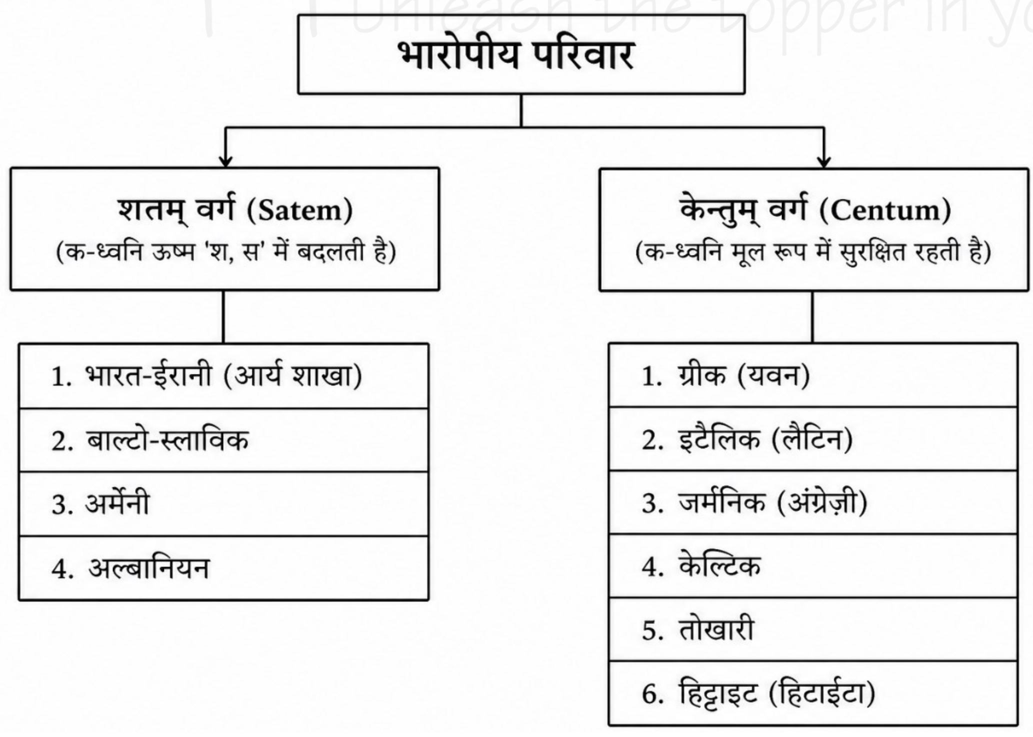

➢ **विशेष नोट:** हमारी **संस्कृत भाषा** भारोपीय परिवार की **'शतम् वर्ग'** की **'भारत-ईरानी (आर्य)'** शाखा के अंतर्गत आती है ।

अर्थ-परिवर्तन की दिशाएँ

समय के साथ समाज में शब्दों के मूल अर्थों में जो बदलाव आता है, उसे मुख्य रूप से तीन श्रेणियों में बाँटा जाता है:

1. **अर्थ-विस्तार (Expansion of Meaning):** जब किसी शब्द का मूल अर्थ किसी संकुचित या सीमित क्षेत्र से निकलकर विस्तृत, व्यापक या सामान्य हो जाता है ।
   - ✓ उदाहरण 1: **'प्रवीण'** का मूल अर्थ था "वीणा बजाने में कुशल" । वर्तमान में इसका अर्थ किसी भी कार्य में चतुर या कुशल व्यक्ति के लिए होता है ।
   - ✓ उदाहरण 2: **'तेल'** का मूल अर्थ था केवल "तिल का रस" । वर्तमान में किसी भी वस्तु के स्नेह-द्रव को तेल कहते हैं, जैसे- मूँगफली का तेल, सरसों का तेल, यहाँ तक कि केरोसिन (मिट्टी का तेल) ।
   - ✓ उदाहरण 3: **'महाराज'** का मूल अर्थ था "बड़ा राजा", परंतु वर्तमान में यह रसोइयों (Cooks) के लिए भी प्रयुक्त होता है।
2. **अर्थ-संकोच (Restriction of Meaning):** जब किसी शब्द का मूल विस्तृत या व्यापक अर्थ सिमटकर किसी एक विशेष वस्तु या व्यक्ति के लिए रूढ़ (सीमित) हो जाता है ।
   - ✓ उदाहरण 1: **'मृग'** का मूल अर्थ था "कोई भी जंगली पशु" (जैसे- सिंह को मृगराज कहते हैं) । वर्तमान में इसका अर्थ केवल "हिरण" के लिए संकुचित हो गया है ।
   - ✓ उदाहरण 2: **'पंकज'** का मूल अर्थ था "कीचड़ में पैदा होने वाला कुछ भी" (जैसे- घोंघा, काई, जोंक आदि) । वर्तमान में यह संकुचित होकर केवल "कमल" के फूल के लिए रूढ़ हो गया है ।
3. **अर्थ देशा (Shift of Meaning):** जब किसी शब्द का पुराना अर्थ पूरी तरह छूट जाता है और उसके स्थान पर एक सर्वथा नया अर्थ आ जाता है ।
   - ✓ उदाहरण 1: **'आकाशवाणी'** का प्राचीन अर्थ "देववाणी/नभवाणी" था, परंतु आज इसका अर्थ 'रेडियो स्टेशन' (All India Radio) हो गया है।
   - ✓ उदाहरण 2: **'असुर'** का मूल ऋग्वैदिक अर्थ "प्राणदाता/देवता" (जैसे इंद्र-वरुण के विशेषण) था, परंतु बाद में इसका अर्थ 'राक्षस' हो गया।

भारतीय दर्शन एवं भाषाविज्ञान में 'वाक्य लक्षण'

भारतीय मनीषियों और वैयाकरणों ने वाक्य के स्वरूप पर गहन विचार कर अपने-अपने लक्षण दिए हैं:

1. **मीमांसा दर्शन (महर्षि जैमिनि) के अनुसार:**
   - ✓ "अर्थकत्वादेकं वाक्यं साकाङ्क्षं चेद्विभागे स्यात्।" **व्याख्या:** मीमांसा के अनुसार पदों का वह समूह वाक्य है जिससे एक ही मुख्य अर्थ या मुख्य विधान (एक क्रिया) प्रकट हो । यदि उस पद-समूह के पदों को अलग-अलग किया जाए, तो वे परस्पर आकाङ्क्षा से युक्त होने चाहिए (अर्थात् एक के बिना दूसरा अधूरा लगे) ।
   - ✓ उदाहरण: "देवदत्तः गच्छति।" यदि केवल 'देवदत्तः' कहें, तो आकांक्षा बचती है कि "क्या करता है?" , और केवल 'गच्छति' कहें, तो आकांक्षा होती है कि "कौन जाता है?" । अतः यह साकाङ्क्षता ही इसे वाक्य बनाती है ।
2. **साहित्यदर्पण (आचार्य विश्वनाथ) के अनुसार:**

   "वाक्यं स्याद्योग्यताकाङ्क्षासत्तियुक्तः पदोच्चयः।" **व्याख्या:** योग्यता, आकांक्षा और आसत्ति (सन्निधि) से युक्त पदों के समूह को वाक्य कहते हैं । इन तीन तत्वों के बिना वाक्य पूर्ण नहीं हो सकता:

- ✓ **आकांक्षा:** पदों को सुनने के बाद आगे का अर्थ जानने की श्रोता की स्वाभाविक उत्सुकता । जैसे— केवल "गाम..." (गाय को) कहकर चुप हो जाने पर वाक्य पूर्ण नहीं होता; जब कहेंगे "गामानय" (गाय को लाओ), तब आकांक्षा शांत होती है ।
- ✓ **योग्यता:** पदों के अर्थों में परस्पर व्यावहारिक मेल या बाधा का न होना । जैसे— "अग्निना सिञ्चति" (अग्नि से सींचता है)। यहाँ व्याकरण सही है, पर अग्नि में सींचने की योग्यता नहीं है (सींचने का कार्य जल से होता है), अतः योग्यता के अभाव में यह वाक्य नहीं है ।
- ✓ **आसत्ति / सन्निधि:** पदों का बिना लंबे अंतराल के, निरंतरता के साथ एक साथ उच्चारण करना । यदि कोई एक शब्द "गाम" अभी बोले और "आनय" चार घंटे बाद बोले, तो काल-व्यवधान के कारण अर्थ स्पष्ट नहीं होगा और वह वाक्य नहीं कहलाएगा ।

3. व्याकरण शास्त्र (आचार्य कात्यायन) के अनुसार:

- ✓ "आख्यातं साव्ययकारकविशेषणं वाक्यम्।" **व्याख्या:** वैयाकरणों के अनुसार **'क्रिया' (आख्यात)** ही वाक्य की आत्मा है । क्रिया पद जब अपने अव्यय, कारक (कर्ता, कर्म आदि) और विशेषणों के साथ सुसज्जित होकर आता है, तो वह समूह वाक्य कहलाता है ।
- ✓ उदाहरण: "चपलः देवदत्तः उच्चैः धावति।" (चंचल देवदत्त जोर से दौड़ता है)। यहाँ 'धावति' मुख्य क्रिया (आख्यात) है , 'देवदत्तः' कर्ता कारक है , 'चपलः' उसका विशेषण है और 'उच्चैः' अव्यय/क्रियाविशेषण है ।

वैदिक संस्कृत तथा लौकिक संस्कृत में अंतर

विषय/लक्षण	वैदिक संस्कृत (Vaidik)	लौकिक संस्कृत (Laukik)
स्वर व्यवस्था	उदात्त, अनुदात्त, स्वरित (संगीतात्मक स्वर व्यवस्था अनिवार्य थी) ।	केवल बलात्मक स्वर (Accent का महत्त्व समाप्तप्राय हो गया) ।
लकार	**11 लकार** (10 सामान्य लकार + 1 विशेष **'लेट् लकार'** जो केवल वेदों में प्रयुक्त होता है) ।	**केवल 10 लकार** (लौकिक संस्कृत में 'लेट् लकार' का प्रयोग पूर्णतः लुप्त हो गया) ।
संधि नियम	संधि करना **वैकल्पिक** था (पदों को अलग भी रखा जा सकता था) ।	संहिता या संधि करना नियमों के अनुसार **अनिवार्य** है ।
उपसर्गों की स्थिति	उपसर्ग धातु से अलग, दूर या बाद में भी आ सकते थे (जैसे— परा मे यन्ति) ।	उपसर्ग का धातु से ठीक पहले जुड़ना अनिवार्य है (जैसे— पराजयते) ।
रूप प्राचुर्य	एक ही शब्द/विभक्ति के अनेक रूप मिलते थे (जैसे— देवासः और देवाः दोनों बनते थे) ।	नियमबद्ध रूप; केवल एक ही प्रामाणिक रूप मिलता है (जैसे— केवल देवाः) ।

भाषा, बोली और वाक् (Language, Dialect & Speech) में भेद

प्रसिद्ध भाषाविद् फर्डिनेंड डी सोस्यूर (Ferdinand de Saussure) के भाषावैज्ञानिक सिद्धांतों के आधार पर इनमें निम्न भेद हैं:

1. **भाषा (Langue):** यह एक विस्तृत भू-भाग में बोली जाने वाली मानक व्यवस्था है । इसका अपना एक निश्चित लिखित व्याकरण होता है, शासन-प्रशासन, शिक्षा और उच्च साहित्य में इसका प्रयोग किया जाता है । यह संपूर्ण समाज की सामूहिक मानसिक संपत्ति होती है । उदाहरण: मानक हिंदी ।

2. **बोली (Dialect):** यह भाषा का ही एक सीमित स्थानीय या क्षेत्रीय रूप होती है जो किसी विशेष अंचल के लोगों द्वारा घरेलू बोलचाल में प्रयोग की जाती है । इसमें कोई कठोर व्याकरणिक नियम नहीं होते और इसका साहित्य मुख्य रूप से लोकगीतों या मौखिक लोककथाओं तक सीमित होता है । एक भाषा के अंदर कई बोलियाँ हो सकती हैं । उदाहरण: ब्रजभाषा, अवधी, भोजपुरी (ये सभी हिंदी भाषा की बोलियाँ हैं) ।
3. **वाक् (Parole):** सोस्यूर के अनुसार 'वाक्' भाषा का **व्यक्तिगत प्रयोग** या किसी व्यक्ति विशेष की अपनी बोलने की विशिष्ट शैली/आवाज है । भाषा समाज की साझी संपत्ति है, लेकिन हर व्यक्ति उस सामाजिक भाषा भंडार से अपनी क्षमता और शैली के अनुसार शब्दों को चुनकर बोलता है ।

तुलनात्मक सूत्र: भाषा एक महासागर या 'समूह' की तरह है, बोलियाँ उससे जुड़ी स्थानीय 'नदियों' की तरह हैं जो अपना मार्ग स्वयं बनाती हैं, और 'वाक्' उस नदी से भरा हुआ 'पानी का घड़ा' है जिसे हर व्यक्ति अपनी आवश्यकता और अनूठी शैली के अनुसार उपयोग करता है ।

प्रमुख ध्वनि-नियम (Sound Laws)

1. **ग्रिम-नियम (Grimm's Law)**

   जैकब ग्रिम (Jacob Grimm) ने 1822 में भारोपीय मूल भाषा की स्पर्श ध्वनियों का जर्मनिक (और अंग्रेजी) भाषाओं में होने वाला ऐतिहासिक परिवर्तन खोजा । इसे **'प्रथम जर्मनिक ध्वनि परिवर्तन'** भी कहते हैं, जिसे तीन चरणों में समझा जाता है:

   ✓ **प्रथम चरण:** मूल भारोपीय महाप्राण घोष ध्वनियाँ (gh, dh, bh) जर्मनिक में अल्पप्राण घोष (g, d, b) में बदल जाती हैं ।
   - संस्कृत (महाप्राण घोष): भ्रातार् (**Bhrātr**) - अंग्रेजी (अल्पप्राण घोष): **Brother** (bh - b)
   - संस्कृत: मधुन (**Madhu**) - अंग्रेजी: **Mead** (dh - d)

   ✓ **द्वितीय चरण:** मूल अल्पप्राण घोष ध्वनियाँ (g, d, b) अल्पप्राण अघोष (k, t, p) में परिवर्तित हो जाती हैं ।
   - संस्कृत (अल्पप्राण घोष): दन्त (**Danta**) - अंग्रेजी (अघोष): **Tooth** (d - t)
   - संस्कृत: जानु (**Jānu** - g/j ध्वनि) - अंग्रेजी: **Knee** (j/g - k)

   ✓ **तीसरे चरण:** मूल अल्पप्राण अघोष ध्वनियाँ (k, t, p) महाप्राण अघोष / ऊष्म संघर्षी (kh, th, ph/f) में बदल जाती हैं।
   - संस्कृत/लैटिन (अल्पप्राण अघोष): पितृ / Pater (**Pitr**) - अंग्रेजी: **Father** (p - f)
   - संस्कृत/लैटिन: त्रयः / Tres (**Trayah**) - अंग्रेजी: **Three** (t - th)

2. **ग्रासमान-नियम (Grassmann's Law)**

   यह नियम ग्रिम नियम के कुछ अपवादों को स्पष्ट करने के लिए हरमन ग्रासमान ने दिया था । इसे **'असिमिलेशन (महाप्राणता के लोप) का नियम'** भी कहते हैं ।

   ✓ **नियम:** यदि संस्कृत या ग्रीक भाषा की किसी मूल धातु या पद में **दो लगातार महाप्राण ध्वनियाँ** विद्यमान हों, तो उच्चारण के संतुलन हेतु **पहली ध्वनि अपनी महाप्राणता खो देती है** और अपने ही वर्ग की अल्पप्राण ध्वनि में बदल जाती है ।

   ✓ **प्रमुख संस्कृत उदाहरण:**
   - **धुह् - दुह्:** मूल धातु रूप में 'ध' (महाप्राण) और 'ह' (महाप्राण) दोनों पास थे । ग्रासमान नियम से पहला 'ध' अपने वर्ग के अल्पप्राण 'द' में बदल गया, जिससे 'धुहति' के स्थान पर **'दुहति'** रूप सिद्ध हुआ ।

- **धा - दधाति:** जब 'धा' धातु का द्वित्व (Reduplication) होकर 'धा-धा' की स्थिति बनती है , तो दो महाप्राण पास आने के कारण पहला 'ध' अल्पप्राण 'द' बन जाता है, जिससे रूप **'दधाति'** बनता है, 'धाधाति' नहीं ।
- **भृ - बिभर्ति:** द्वित्व होने पर 'भृ-भृ' की स्थिति में पहला महाप्राण 'भ' अपने वर्ग के अल्पप्राण 'ब' में बदल जाता है, जिससे रूप **'बिभर्ति'** सिद्ध होता है, 'भिभर्ति' नहीं ।

3. **वर्नर-नियम (Verner's Law)**

कार्ल वर्नर ने 1875 में ग्रिम नियम के उन अपवादों की व्याख्या की जहाँ अल्पप्राण अघोष (k, t, p) महाप्राण अघोष (f, th, h) में न बदलकर सीधे घोष ध्वनियों में बदल रहे थे ।

✓ **नियम:** वर्नर ने सिद्ध किया कि यह परिवर्तन **वैदिक स्वर-बलाघात (Stress/Accent)** के कारण होता है । यदि मूल भारोपीय भाषा में स्पर्श अघोष ध्वनि (जैसे 'त') से ठीक पहले वाले स्वर पर बलाघात (Udatta) न होकर **बलाघात शब्द के अंतिम भाग या स्वर पर हो**, तो वह अघोष ध्वनि महाप्राण अघोष न बनकर **घोष ध्वनि (Voiced)** में बदल जाती है।

✓ पितृ (Pitr) बनाम भ्रातृ (Bhrātr) का प्रसिद्ध अंतर:

- संस्कृत के **'पितृ'** शब्द में बलाघात 'तृ' (अंतिम भाग) पर है, पूर्ववर्ती 'पि' पर नहीं । इसलिए 'त' (t) ग्रिम नियम के अनुसार 'th' न बनकर वर्नर नियम से घोष 'द' (d) ध्वनि में बदल गया, जिससे अंग्रेजी में **Father** बना (जिसमें th का उच्चारण घोष 'द' की तरह होता है) ।
- इसके विपरीत, संस्कृत के **'भ्रातृ'** शब्द में बलाघात पूर्ववर्ती स्वर 'भ्रा' पर ही है । अतः यहाँ ग्रिम नियम का सामान्य पालन हुआ और 'त' का 'th' (अघोष) बना, जिससे अंग्रेजी में **Brother** रूप सिद्ध हुआ ।

इकाई – VI (ख) व्याकरण का विशिष्ट अध्ययन

व्याकरण संज्ञा प्रकरण (लघुसिद्धान्तकौमुदी के अनुसार प्रमुख संज्ञाएँ)

1. **इत् संज्ञा:** 'हलन्त्यम्', 'उपदेशेऽजनुनासिक इत्', 'लशक्वतद्धिते' आदि 6 सूत्रों से उपदेश अवस्था में अंतिम व्यंजनों या अनुनासिक स्वरों की इत् संज्ञा होती है ।
2. **संयोग संज्ञा:** "हेलोऽनन्तराः संयोगः" - स्वरों के व्यवधान के बिना अत्यंत समीप आने वाले व्यंजनों की संयोग संज्ञा होती है ।
3. **संहिता संज्ञा:** "परः सन्निकर्षः संहिता" - वर्णों की आपस में अत्यंत समीपता या अत्यधिक निकटता को संहिता (संधि की स्थिति) कहते हैं ।
4. **गुण संज्ञा:** "अदेङ् गुणः" - ह्रस्व 'अ', 'ए' और 'ओ' इन तीनों वर्णों की गुण संज्ञा होती है ।
5. **वृद्धि संज्ञा:** "वृद्धिरादैच्" - दीर्घ 'आ', 'ऐ' और 'औ' इन तीनों वर्णों की वृद्धि संज्ञा होती है ।
6. **प्रातिपदिक संज्ञा:** "अर्थवदधातुरप्रत्ययः प्रातिपदिकम्" तथा "कृत्तद्धितसमासाश्च" सूत्रों से धातु, प्रत्यय और प्रत्ययान्त को छोड़कर अन्य अर्थवान शब्दस्वरूप की प्रातिपदिक संज्ञा होती है ।
7. **नदी संज्ञा:** "यू स्त्र्याख्यौ नदी" - नित्य स्त्रीलिंग ईकारान्त (ई) और ऊकारान्त (ऊ) शब्दों की नदी संज्ञा होती है (जैसे- गौरी, नदी, वधू) ।
8. **घि संज्ञा:** "शेषो घ्यसखि" - नदी संज्ञा से भिन्न इकारान्त (इ) और उकारान्त (उ) पुल्लिंग व स्त्रीलिंग शब्दों की 'घि' संज्ञा होती है (सखि शब्द को छोड़कर; जैसे- हरि, गुरु) ।
9. **उपधा संज्ञा:** "अलोऽन्त्यात् पूर्व उपधा" - किसी शब्द के अंतिम वर्ण (चाहे स्वर हो या व्यंजन) से ठीक पहले वाले वर्ण की उपधा संज्ञा होती है ।

10.टी संज्ञा: "अचोऽन्त्यादि टि" - किसी शब्द के स्वरों में जो अंतिम स्वर होता है, वह स्वर जिसके आदि में हो, उस पूरे वर्ण-समुदाय की 'टी' संज्ञा होती है (जैसे- 'मनस्' में 'अस्' की टी संज्ञा)।

11.पद संज्ञा: "सुप्तिङन्तं पदम्" - सुप् प्रत्यय (21) और तिङ् प्रत्यय (18) जिनके अंत में जुड़े हों, उन शब्दरूपों की पद संज्ञा होती है।

12.प्रगृह्य संज्ञा: "ईदूदेद्द्विवचनं प्रगृह्यम्" - द्विवचनान्त ईकारान्त, ऊकारान्त और एकारान्त पदों की प्रगृह्य संज्ञा होती है (इनकी संधि नहीं होती, प्रकृतिभाव रहता है; जैसे- हरी एतौ, विष्णू इमौ)।

सन्धि प्रकरण (महत्वपूर्ण सूत्र एवं उदाहरण)

(A) अच् (स्वर) सन्धि

- **यण् सन्धि:** 'इको यणचि' - इक (इ, उ, ऋ, ऌ) के स्थान पर यण् (य, व, र, ल) आदेश होता है यदि आगे असमान स्वर (अच्) हो। उदाहरण: सुध्युपास्यः, मध्वरिः।
- **गुण सन्धि:** 'आद्गुणः' - अ/आ के बाद इ/उ/ऋ/ऌ आने पर क्रमशः ए, ओ, अर्, अल् आदेश होता है। उदाहरण: उपेन्द्रः, गंगोदकम्, रमेशः।
- **वृद्धि सन्धि:** 'वृद्धिरेचि' - अ/आ के बाद ए/ऐ/ओ/औ होने पर क्रमशः ऐ और औ एकादेश होता है। उदाहरण: कृष्णैकत्वम्, महौषधम्।
- **अयादि सन्धि:** 'एचोऽयवायावः' - ए, ओ, ऐ, औ के बाद कोई स्वर होने पर क्रमशः अय्, अव्, आय्, आव् आदेश होता है। उदाहरण: हरये, विष्णवे, नायकः, पावकः।
- **पूर्वरूप सन्धि:** 'एङः पदान्तादति' - पद के अंत में स्थित ए/ओ के बाद यदि ह्रस्व 'अ' आए, तो उस 'अ' का पूर्वरूप एकादेश हो जाता है और 'अ' के स्थान पर अवग्रह चिह्न (ऽ) लग जाता है। उदाहरण: हरेऽव, विष्णोऽव, शिवोऽर्च्यः।
- **पररूप सन्धि:** 'एङि पररूपम्' - अकारान्त उपसर्ग के बाद यदि ए/ओ से प्रारंभ होने वाली धातु आए, तो पररूप एकादेश होता है। उदाहरण: प्रेजते, उपोषति।
- **प्रकृतिभाव सन्धि:** 'प्लुतप्रगृह्या अचि नित्यम्' - प्लुत स्वर और प्रगृह्य संज्ञक वर्णों के बाद स्वर होने पर संधि कार्य नहीं होता, रूप वैसा ही रहता है। उदाहरण: हरी एतौ, अमी ईशाः।

(B) हल् (व्यंजन) सन्धि

- **श्चुत्व सन्धि:** 'स्तोः श्चुना श्चुः' - स या त-वर्ग (त, थ, द, ध, n) का श या च-वर्ग के साथ योग होने पर स को 'श' और त-वर्ग को क्रमशः 'च-वर्ग' आदेश होता है। उदाहरण: रामश्शेते, सच्चित्।
- **ष्टुत्व सन्धि:** 'ष्टुना ष्टुः' - स या त-वर्ग का ष या ट-वर्ग के साथ योग होने पर स को 'ष' और त-वर्ग को क्रमशः 'ट-वर्ग' आदेश होता है। उदाहरण: रामष्टीकते, तट्टीका।
- **जशत्त्व सन्धि (पदान्त):** 'झलां जशोऽन्ते' - पद के अंत में स्थित झल् वर्णों (वर्ग के 1, 2, 3, 4 वर्ण तथा उष्म) के स्थान पर जश् (वर्ग का तीसरा वर्ण - ज, ब, ग, ड, द) आदेश होता है। उदाहरण: वागीशः, जगदीशः।
- **अनुस्वार सन्धि:** 'मोऽनुस्वारः' - पद के अंत में स्थित 'म' के बाद यदि कोई व्यंजन वर्ण आए, तो 'म' का अनुस्वार (ं) हो जाता है। उदाहरण: हरिं वन्दे।

(C) विसर्ग सन्धि

- **सत्त्व विसर्ग सन्धि:** 'विसर्जनीयस्य सः' - विसर्ग के बाद खरी (प्रत्येक वर्ग का 1, 2 वर्ण तथा श, ष, स) होने पर विसर्ग का 'स' हो जाता है । उदाहरण: विष्णुस्त्राता ।
- **उत्त्व विसर्ग सन्धि:** 'अतो रोरप्लुतादप्लुते' तथा 'हशि च' - ह्रस्व 'अ' से परे रोरुत्व विसर्ग को 'उ' आदेश होता है यदि आगे ह्रस्व 'अ' या हश् वर्ण हों । गुण और पूर्वरूप होकर 'ओ' रूप बनता है । उदाहरण: शिवोऽर्च्यः, बालो हसति ।
- **रुत्त्व विसर्ग सन्धि:** 'ससजुषो रुः' - पदान्त स और सजुष् के ष को 'रु' आदेश होता है । स्वर परे होने पर विसर्ग का 'र' ही शेष रहता है । उदाहरण: गौर्अयम् (गौरायाः) ।
- **विसर्ग लोप एवं दीर्घ सन्धि:** 'रो रि' तथा 'ढ्रलोपे पूर्वस्य दीर्घोऽणः' - 'र' के बाद 'र' आने पर पहले 'र' का लोप हो जाता है और उससे पूर्ववर्ती अ, इ, उ स्वर दीर्घ हो जाते हैं । उदाहरण: पुनर् + रमते = पुनारमते, हरि+रम्यः = हरीरम्यः ।

सुबन्त प्रकरण (अजन्त एवं हलन्त)

प्रातिपदिक शब्दों के अंत में जुड़ने वाले **21 सुप् प्रत्ययों** की तालिका नीचे दी गई है, जो संज्ञा पदों में सात विभक्तियाँ और तीन वचन निर्मित करते हैं:

विभक्ति	एकवचन	द्विवचन	बहुवचन
प्रथमा	सु	औ	जस्
द्वितीया	अम्	औट्	शस्
तृतीया	टा	भ्याम्	भिस्
चतुर्थी	ङे	भ्याम्	भ्यस्
पञ्चमी	ङसिँ	भ्याम्	भ्यस्
षष्ठी	ङस्	ओस्	आम्
सप्तमी	ङि	ओस्	सुप्

महत्वपूर्ण प्रातिपदिकों के विशेष सूत्र एवं प्रक्रिया:

- **राम (अकारान्त पुल्लिंग):** इसमें प्रातिपदिक संज्ञा हेतु 'अर्थवदधातुरप्रत्ययः प्रातिपदिकम्' सूत्र प्रयुक्त होता है । बहुवचन में 'बहुषु बहुवचनम्' से जस् प्रत्यय लगकर रूप बनते हैं।
- **सर्व (सर्वनाम शब्द):** 'सर्वादीनि सर्वनामानि' सूत्र से सर्व आदि 35 शब्दों की सर्वनाम संज्ञा होती है । प्रथमा बहुवचन में जस् के स्थान पर 'जसः शी' से 'शी' (ई) आदेश होकर **'सर्वे'** रूप बनता है ।
- **हरि (इकारान्त पुल्लिंग):** 'शेषो घ्यसखि' सूत्र से इसकी 'घि' संज्ञा होती है । ङित् प्रत्यय परे होने पर 'घेर्ङिति' सूत्र से इकार को गुण (ए) आदेश होता है, जिससे चतुर्थी एकवचन में **'हरये'** बनता है ।
- **सखि (इकारान्त पुल्लिंग-विशेष):** 'सख्युरसम्बुद्धौ' सूत्र के अनुसार सम्बोधन को छोड़कर सु प्रत्यय परे होने पर सखि शब्द की घि संज्ञा नहीं होती । प्रथमा एकवचन में 'अनङ् सौ' सूत्र से अनङ् आदेश होकर **'सखा'** रूप सिद्ध होता है ।
- **राजन् (नकारान्त पुल्लिंग):** पदान्त न-लोप हेतु 'नलोपः प्रातिपदिकान्तस्य' सूत्र प्रयुक्त होता है । सम्बुद्धि रहित सर्वनामस्थान परे होने पर 'सर्वनामस्थाने चासम्बुद्धौ' से उपधा दीर्घ होकर **'राजानौ, राजानः'** रूप बनते हैं । भ-संज्ञा होने पर 'अल्लोपोऽनः' से 'अन्' के अकार का लोप होकर **'राज्ञः'** रूप बनता है ।

कारक प्रकरण (सिद्धान्तकौमुदी के अनुसार मुख्य सूत्र)

"क्रियाजनकत्वं कारकम्" अर्थात् जो क्रिया को साक्षात् उत्पन्न करने में सहायक हो, उसे कारक कहते हैं । संस्कृत व्याकरण में **कारकों की संख्या 6 है** (सम्बन्ध और सम्बोधन को साक्षात् क्रियाजनक न होने के कारण कारक नहीं माना जाता) ।

1. **प्रथमा विभक्ति:** "प्रातिपदिकार्थलिंगपरिमाणवचनमात्रे प्रथमा" - किसी शब्द का मूल अर्थ (उच्चैः, नीचैः, कृष्णः), नियत या अनियत लिंग (तटः, तटी, तटम्), परिमाण/माप (द्रोणो व्रीहिः) तथा केवल संख्या या वचन (एकः, द्वौ, बहवः) प्रकट करने में प्रथमा विभक्ति होती है । सम्बोधन में भी प्रथमा होती है ('सम्बोधने च') ।
2. **द्वितीया विभक्ति (कर्म कारक):** "कर्तुरीप्सिततमं कर्म" - कर्ता अपनी क्रिया के द्वारा जिसे सबसे अधिक प्राप्त करना चाहता है, उसकी कर्म संज्ञा होती है और द्वितीया विभक्ति लगती है । "अकथितं च" सूत्र से अपादान आदि कारकों की विवक्षा न होने पर 16 द्विकर्मक धातुओं (दुह्, याच्, पच्, दण्ड्, रुधि, प्रच्छि, चि, ब्रू, शास्, जि, मथ्, मुष्, नी, हृ, कृष्, वह्) के गौण कर्म में भी द्वितीया होती है ।
3. **तृतीया विभक्ति (करण कारक):** "साधकतमं करणम्" - क्रिया की पूर्ण सिद्धि में जो तत्व कर्ता का सबसे प्रधान सहायक होता है, उसकी करण संज्ञा होती है । "येनाङ्गविकारः" - शरीर के जिस विकृत अंग के द्वारा व्यक्ति का विकार लक्षित हो, उस अंगवाचक शब्द में तृतीया होती है (जैसे- अक्ष्णा काणः - आँख से काणा) । "इत्थंभूतलक्षणे" - जिस विशेष चिह्न या लक्षण से किसी की पहचान हो, उसमें तृतीया होती है (जैसे- जटाभिस्तापसः - जटाओं से तपस्वी) ।
4. **चतुर्थी विभक्ति (सम्प्रदान कारक):** "कर्मणा यमभिप्रैति स सम्प्रदानम्" - दान कर्म के द्वारा कर्ता जिसे संतुष्ट या प्रसन्न करना चाहता है, वह सम्प्रदान संज्ञक होता है । "रुच्यर्थानां प्रीयमाणः" - रुचि या पसंद अर्थ वाली धातुओं के योग में जो प्रसन्न होने वाला व्यक्ति (प्रीयमाण) होता है, उसमें चतुर्थी होती है (जैसे- हरये रोचते भक्तिः) । "नमःस्वस्तिस्वाहास्वधाऽलम्वषड्योगाच्च" - नमः, स्वस्ति, स्वाहा, स्वधा, अलम् और वषट् के योग में नित्य चतुर्थी विभक्ति होती है (जैसे- रामाय नमः, अग्नये स्वाहा) ।
5. **पञ्चमी विभक्ति (अपादान कारक):** "ध्रुवमपायेऽपादानम्" - अपाय (अलग होने या पृथक होने) की स्थिति में जो स्थिर या अवधिभूत तत्व (ध्रुव) होता है, उसकी अपादान संज्ञा होती है और पञ्चमी लगती है (जैसे- वृक्षात् पत्रं पतति) । "भीत्रार्थानां भयहेतुः" - भय (डरना) और त्राण (रक्षा करना) अर्थ वाली धातुओं के प्रयोग में जो भय का मूल कारण होता है, उसमें पञ्चमी विभक्ति लगती है (जैसे- चौराद् बिभेति - चोर से डरता है) ।
6. **षष्ठी विभक्ति (सम्बन्ध):** "षष्ठी शेषे" - जहाँ कारक (कर्ता, कर्म आदि) और प्रतिपदिकार्थ से भिन्न स्वामी-सेवक भाव या जन्य-जनक भाव जैसा केवल संबंध प्रकट करना हो, वहाँ षष्ठी विभक्ति होती है (जैसे- राज्ञः पुरुषः, मातुः पुत्रः) ।
7. **सप्तमी विभक्ति (अधिकरण कारक):** "आधारोऽधिकरणम्" - कर्ता और कर्म की क्रिया का जो मुख्य आधार (औपश्लेषिक, वैषयिक, अभिव्यापक) होता है, उसकी अधिकरण संज्ञा होती है और सप्तमी लगती है ।

समास प्रकरण (लघुसिद्धान्तकौमुदी के अनुसार)

"समसनं समासः" अर्थात् अनेक पदों का मिलकर संक्षिप्त होकर एक पद हो जाना समास कहलाता है । वैयाकरणों के अनुसार समास एक **'वृत्ति'** है ("परार्थाभिधानं वृत्तिः") । लघुसिद्धान्तकौमुदी के अनुसार समास मुख्य रूप से **पाँच प्रकार** के होते हैं:

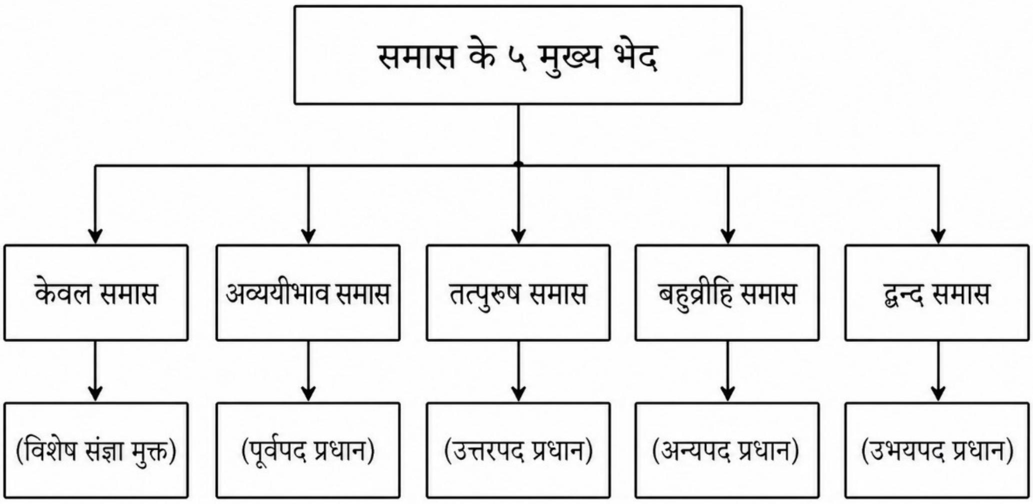

1. **केवल समास:** "विशेषसंज्ञाविनिर्मुक्तः केवलसमासः" - जिस समास की कोई विशेष संज्ञा (जैसे अव्ययीभाव या तत्पुरुष) नहीं की जा सकती, उसे केवल समास कहते हैं । इसे 'भूतपूर्व' समास भी कहते हैं क्योंकि इसका प्रधान उदाहरण **'भूतपूर्वः'** है । समर्थ सुबन्त का सुबन्त के साथ समास 'सह सुपा' सूत्र से होता है । 'इवेन सह समासः' वार्तिक से 'इव' अव्यय के साथ विभक्ति-लोप रहित केवल समास होता है (जैसे- वागर्थाविव) ।
2. **अव्ययीभाव समास:** "प्रायेण पूर्वपदप्रधानः अव्ययीभावः" - जिस समास में पूर्व पद की प्रधानता हो और सामासिक पद मिलकर अव्यय बन जाए। इसका मुख्य सूत्र 'अव्ययं विभक्तिसमीपसमृद्धि...' है जो कुल **16 अर्थों** में अव्ययीभाव समास का विधान करता है। 'नदीभिश्च' सूत्र से नदीवाचक शब्दों के साथ संख्यावाचक शब्दों का अव्ययीभाव समास होता है (जैसे- पञ्चगङ्गम्, द्वियमुनम्)।
3. **तत्पुरुष समास:** "प्रायेण उत्तरपदप्रधानः तत्पुरुषः" - जहाँ उत्तर पद (बाद वाले पद) के अर्थ की प्रधानता होती है । इसके दो मुख्य भेद हैं— व्याधिकरण (दोनों पदों में अलग-अलग विभक्तियाँ) और समानाधिकरण (दोनों पदों में समान विभक्ति, जिसे **'कर्मधारय'** कहते हैं) । कर्मधारय का उपभेद **'द्विगु समास'** है जहाँ पूर्वपद संख्यावाचक होता है ("संख्यापूर्वो द्विगुः") । उपपद तत्पुरुष का प्रसिद्ध उदाहरण **'कुम्भकारः'** है ।
4. **बहुव्रीहि समास:** "प्रायेण अन्यपदप्रधानः बहुव्रीहिः" - जहाँ सामासिक पदों (पूर्व और उत्तर पद) के अर्थ मुख्य न होकर किसी तीसरे बाहरी अन्य पद (विशेष्य) की प्रधानता होती है । इसका प्रधान सूत्र 'अनेकमन्यपदार्थे' है । उदाहरण: पीताम्बरः (पीतम् अम्बरं यस्य सः - श्रीकृष्णः)।
5. **द्वन्द्व समास:** "प्रायेण उभयपदप्रधानः द्वन्द्वः" - जहाँ समास के दोनों (या सभी) पदों के अर्थ की समान प्रधानता होती है । इसका मुख्य सूत्र 'चार्थे द्वन्द्वः' है । इसके तीन मुख्य उपभेद होते हैं— इतरेतर द्वन्द्व (जैसे- रामकृष्णौ), समाहार द्वन्द्व (जैसे- पाणिपादम्) और एकशेष द्वन्द्व (जैसे- पितरौ) ।

तिङन्त प्रकरण: 10 गणों का संक्षिप्त परिचय

महर्षि पाणिनि ने संस्कृत की संपूर्ण धातुओं (धातुपाठ) को **10 गणों** में विभाजित किया है । पाणिनि धातुपाठ में कुल **1970 (लगभग 2000) धातुएँ** परिगणित हैं:

क्र.सं.	गण का नाम	प्रतिनिधि धातु	विकरण प्रत्यय	मुख्य सूत्र	धातुओं की संख्या	उदाहरण
1	**भ्वादि गण**	भू (होना)	शप् (अ)	कर्तरि शप्	**1035** (सबसे बड़ा गण)	भवति, पठति

2	**अदादि गण**	अद् (खाना)	(विकरण का लुक्/अभाव)	अदिप्रभृतिभ्यः शपः	72	अत्ति
3	**जुहोत्यादि गण**	हु (हवन करना)	श्लु (विकरण लोप + द्वित्व)	जुहोत्यादिभ्यः श्लुः	24	जुहोति, बिभेति
4	**दिवादि गण**	दिव् (क्रीड़ा करना)	श्यन् (य)	दिवादिभ्यः श्यन्	140	दीव्यति, नृत्यति
5	**स्वादि गण**	सु (अभिषव/रस निकालना)	श्नु (नु)	स्वादिभ्यः श्नुः	35	सुनोति, शृणोति
6	**तुदादि गण**	तुद् (दुःख देना)	श (अ - बिना गुण कार्य के)	तुदादिभ्यः शः	157	तुदति
7	**रुधादि गण**	रुध् (रोकना)	श्नम् (न - धातु के मध्य में)	रुधादिभ्यः श्नम्	25	रुणद्धि, भिनत्ति
8	**तनादि गण**	तनु (फैलाना)	उ	तनादिभ्यः उः	10	तनोति, करोति
9	**क्रयादि गण**	क्री (खरीदना)	श्ना (ना)	क्र्यादिभ्यः श्ना	61	क्रीणाति, गृह्णाति
10	**चुरादि गण**	चुर् (चोरी करना)	णिच् (इ - उभयपदी)	सत्यापपाश...	411	चोरयति / चोरयते

प्रत्ययान्त (सनाद्यन्त) प्रक्रिया

पाणिनीय अष्टाध्यायी के सूत्र "सनाद्यन्ता धातवः" के अंतर्गत **12 प्रत्यय** आते हैं । जब ये प्रत्यय मूल धातुओं या संज्ञा शब्दों के पीछे जुड़ते हैं, तो इनसे बनने वाले नए शब्दरूपों की भी **'धातु संज्ञा'** ही होती है और इनके रूप भी मूल धातुओं की तरह दसों लकारों में चलते हैं । इनमें चार प्रमुख प्रक्रियाएँ निम्नलिखित हैं:

1. **णिजन्त प्रक्रिया (Causative):** जब कर्ता स्वयं कोई कार्य न करके किसी अन्य व्यक्ति को उस कार्य को करने के लिए प्रेरित करता है, तो धातु से **'णिच्'** प्रत्यय लगाया जाता है (इसका मुख्य उद्देश्य प्रेरणा देना है) ।
   - ✓ मुख्य सूत्र: "हेतुमति च" - प्रयोजक व्यापार (प्रेरणा) अर्थ में धातु से णिच् प्रत्यय होता है, जिसमें केवल 'इ' शेष बचता है ।
   - ✓ उदाहरण: पठ् (पढ़ना) + णिच् = **पाठयति** (पढ़वाता है) , गम् + णिच् = **गमयति** (भेजता है) ।
2. **सनन्त प्रक्रिया (Desiderative):** जब कर्ता के मन में किसी क्रिया को करने की इच्छा प्रकट होती है, तो "इच्छा" अर्थ को बताने के लिए धातु के पीछे **'सन्'** प्रत्यय लगाया जाता है।
   - ✓ मुख्य सूत्र: "धातोः कर्मणः समानकर्तृकादिच्छायां वा" - इच्छा अर्थ में सन् प्रत्यय होता है और धातु को द्वित्व (दो बार उच्चारण) होता है।
   - ✓ उदाहरण: पठ् + सन् = **पिपठिषति** (पढ़ने की इच्छा करता है) , ज्ञा + सन् = **जिज्ञासते** (जानने की इच्छा करता है) ।